International Conference on Social Science & Humanities Trends
International Journal for Research Trends in Social Science & Humanities
April 2025
ISSN: 2584-2455

भारतीय लोकतंत्र के चार मिथक

डॉ निलेश कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर
राजनीति विज्ञान विभाग
एम. जी. एम. (पी. जी.) कॉलेज, सम्भल

राजनीति विज्ञान में हम लोकतंत्र को शासन की एक पद्धति के रूप में जानते हैं जबकि लोकतंत्र सामूहिक रूप से निर्णय लेने की उस प्रक्रिया का नाम है। जिस निर्णय का प्रभाव उस समूह पर पड़ने वाला है। इतिहासकारों एवं विद्वानों का एक वर्ग इस बात पर सहमत है कि भारत भूमि लोकतंत्र की जननी रही है (तंवर एवं कदम)।हालांकि जब भारत ने आजादी प्राप्त की तब इस बात पर संदेह व्यक्त किया गया कि भारत में लोकतंत्र सतत रूप से संचालित हो सकता है। दरअसल पश्चिमी विचारक एक ऐसे समाज में लोकतंत्र के सफल होने की संभावना देख ही नहीं पा रहे थे जो बहुलवादी हो, उनके हिसाब से लोकतंत्र की सफलता के लिए सजातीय (होमोजेनस) समाज होना पूर्व शर्त थी। लेकिन भारतीय लोकतंत्र की सफलता एवं सततता ने न केवल उनकीअवधारणाओं को गलत साबित किया बल्कि नए कीर्तिमान स्थापित किए है।

भारतीय लोकतंत्र में अनेक ऐसे मिथक प्रचलित हैं जो वास्तविकता से दूर प्रतीत होते हैं। दरअसल लोकतंत्र में अच्छे एवं बुरे के मानदंड हमने भारतीय समाज एवं राजनीति के मॉडल से ग्रहण न करते हुए पश्चिम से आयातित मॉडल से ग्रहण किए हैं जिसके कारण हम भारतीय लोकतंत्र में कुछ ऐसी चीजों को बुराइयों के रूप में देखते हैं जो वास्तव में या तो बुरी है ही नहीं या फिर उनके सकारात्मक पक्षों को हम नजरअंदाज कर देते हैं। यह लेख ऐसे ही कुछ मिथकों को तोड़ने को समर्पित है।

भारतीय लोकतंत्र का पहला मिथक राष्ट्र एवं क्षेत्र के हितों के विरोधाभास से संबंधित है। जिसमें यह माना जाता है कि राष्ट्रीय हित के आगे क्षेत्रीय हितों को प्राथमिकता नहीं दी जानी चाहिए। यह पहला विचार (आईडिया) है जिसे भारतीय लोकतंत्र ने खारिज किया। सबसे पहले तो यह स्पष्ट नहीं था कि राष्ट्र का विकास किसका विकास है? आजादी के बाद कांग्रेस पहली पार्टी थी जिसे राष्ट्रीय कहा जाता था | जनता राष्ट्र के नाम पर मत भी देती थी, लेकिन जल्द ही लोग समझ गए कि राष्ट्रीय प्रश्नों के आगे हमारी क्षेत्रीय समस्याएं पीछे रह जा रही हैं ,इसी परिप्रेक्ष्य में स्थानीय या राज्य स्तरीय राजनीतिक दलों का उद्भव हुआ। इन क्षेत्रीय राजनीतिक दलों ने भारत के कई राज्यों से कांग्रेस को सत्ता से बाहर कर दिया। वहां आज भी क्षेत्रीय दल ही प्रमुख स्थान प्राप्त

करते हैं जैसे पश्चिम बंगाल में टीएमसी, तमिलनाडु में डीएमके व एआईएडीएमके आदि (हंसेन एवं जैफर्लो : 1998)। इन राज्यों ने लोकतंत्र को क्षेत्रीय आकांक्षाओं को पूरा करने का माध्यम बनाया। इन आकांक्षाओं में न केवल क्षेत्रीय भौतिक विकास था बल्कि सामाजिक व सांस्कृतिक आकांक्षाएं भी थी (जिसमें भाषायी स्वायत्तता प्रमुख है) ।

भारतीय लोकतंत्र का दूसरा मिथक भारतीय राजनीति में जाति के बढ़ते हुए प्रभाव को लेकर के हैं जिसे भारतीय राजनीति में जातिवाद का नाम दिया जाता है। तथा यह भी माना जाता है कि भारतीय राजनीति में जाति भारतीय लोकतंत्र को कमजोर कर रही है। भारतीय राजनीति में जातिवाद है जो भारतीय राजनीति को नकारात्मक रूप से प्रभावित करता है तथा जनता को मतदान जाति के आधार पर नहीं करना चाहिए। यह दूसरा विचार (आईडिया) है जिसे इंडियन डेमोक्रेसी ने खारिज किया |इसके समर्थन में तो सैकड़ों किताबें लिखी जा चुकी है| जाति और राजनीति के अंतर्संबंधों का विश्लेषण करते समय हमें ध्यान रखना चाहिए कि राजनीतिक संस्थाएं कभी भी शून्य में काम नहीं करतीं। वे या तो समाज में पहले उपलब्ध सांगठनिक आधार का इस्तेमाल करती हैं या फिर नए संगठन के आधारों को गढ़ती हैं। जहां तक भारतीय समाज की बात है तो इसकी समाज-व्यवस्था जाति संबंधी संरचनाओं तथा अस्मिताओं के आसपास संगठित है। जाहिर सी बात है यदि राजनीतिक संस्थाएं गोलबंदी का आधार ढूंढेंगी तो समाज में मौजूद पहले से सांगठनिक आधार को इस्तेमाल करेंगी न कि नए सांगठनिक आधार को गढ़ेंगी। भारतीय राजनीति में जातिवाद को एक बुराई के रूप में देखने वाले बुद्धिजीवी एक अलग ही स्वप्नलोक (यूटोपिया)में मग्न हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हें ना तो राजनीति की समझ है न ही भारतीय समाज की प्रकृति के विषय में वे कुछ जानते हैं। अब भारत जैसा समाज जो जाति के रूप में ही संगठित है वहां राजनीति जाति आधारित गोलबंदी की ही कोशिश करेगी न कि कोई कृत्रिम संरचना गढ़कर उसके आधार पर समाज को गोलबंद करने की कोशिश करेगी जिससे कि सत्ता प्राप्त की जा सके। इस प्रकार रजनी कोठारी ने बताया कि जिसे हम 'राजनीति में जातिवाद' कहते हैं दरअसल वह 'जातियों का राजनीतिकरण' है। जाति और राजनीति के बीच की अन्तर्क्रिया ने दोनों के स्वरूप में थोड़ा बहुत बदलाव कर दिया है (कोठारी;1970)। लोकतंत्र किसी भी समाज के राजनीतिक लोकतंत्रीकरण की मांग करता है। लोकतंत्रीकरण का तात्पर्य है समाज के संपूर्ण हिस्से की शासन में बढ़ती सहभागिता। एक समुदाय जो हमेशा से हाशिए पर रहा पहली बार लोकतंत्र के कारण जातिगत आधार पर गोलबंदी करके सत्ता में निरंतर सहभागिता कर रहा है। यदि राजनीति एवं जाति के संबंधों में बुराई ही देखते रहेंगे तो हम लोकतंत्रीकरण की उस प्रक्रिया को नकार रहे होंगे जिसने भारत में लोकतंत्र को सफल बनाने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उस समाज की क्या समस्या है क्या आवश्यकता है, यह उस समाज का व्यक्ति ही अन्यों के अपेक्षाकृत अधिक

समझता है। यदि आप जाति के आधार पर राजनीति को गलत मानते हैं तो उत्तर प्रदेश में सपा व बसपा ,बिहार में JDU व RLD, तमिलनाडु में DMK आदि को आप गलत मानेंगे।

भारतीय लोकतंत्र का तीसरा मिथक राजनीति तथा धर्म के अंतर्संबंधों को लेकर है। जिसमें धर्म तथा राजनीति के किसी भी तरह की अन्तरक्रिया को सांप्रदायिक मानकर नकार दिया जाता है। धर्म तथा लोकतंत्र के बीच अंतर्संबंध स्थापित करना एक कठिन कार्य है। धर्म लोकतंत्र के लिए सहायक होगा या फिर यह लोकतंत्र में बाधा उत्पन्न करेगा इसका निश्चित उत्तर नहीं दिया जा सकता। ना तो यह कहा जा सकता है कि कोई विशिष्ट धर्म लोकतंत्र का समर्थक है, लोकतंत्र का विरोधी है या फिर लोकतंत्र से निष्पक्ष है। हां यह आवश्यक माना जा सकता है कि जिस धर्म में पद सोपानिकता का निश्चित ढांचा हो तथा जो अपने अनुयायियों से पूर्ण निष्ठा एवं पूर्ण आज्ञापालन की मांग करता हो वह लोकतंत्र के लिए बाधाएं उत्पन्न कर सकता है। क्योंकि ऐसे धर्म में धर्म के विभिन्न पक्षों एवं आस्थाओं पर प्रश्न उठाने की अनुमति नहीं होती। वहीं जिस धर्म में धर्म के विभिन्न पक्षों तथा धार्मिक आस्थाओं पर खुलकर बहस होती है तथा उसमें सुधार करने को भी लोग तत्पर रहते हैं, ऐसा धर्म लोकतंत्र के लिए सहायक हो सकता है (बीथम एवं बॉयले)। भारतीय संविधान द्वारा अपनाया गया पंथनिरपेक्षता का मॉडल जो पश्चिम से अनेक अर्थों में भिन्न है ने एक ऐसा भारतीय समाज तैयार किया जिसमें विभिन्न धर्मो के लोग धार्मिक आजादी का प्रयोग करते हुए सहिष्णुतापूर्वक रहते हैं । पंथनिरपेक्षता का भारतीय मॉडल सभी धर्म से समान फ़ासले पर आधारित नहीं है बल्कि उसूली फ़ासले के सिद्धांत पर आधारित है। जिसके तहत राज्य धार्मिक आजादी प्रदान करते हुए भी आवश्यक परिस्थितियों में सैद्धांतिक आधार पर हस्तक्षेप कर सकता है(भार्गव:1998) , जैसे - अस्पृश्यता निवारण तथा तीन तलाक निषेध के मामले में । हालांकि धर्म के कारण ही सांप्रदायिक दंगे छिट पुट रूप से दिखाई देते हैं लेकिन यह कहना बेमानी होगा कि अधिकांश जनता सांप्रदायिक है। भारतीय समाज एवं राजनीति की समझ रखने वाला कोई भी व्यक्ति यह बता देगा कि भारतीय लोकतंत्र का स्वरूप यह हो चुका है कि उसे या तो लोकतंत्र या तो धर्म नहीं चाहिए बल्कि लोकतंत्र और धर्म दोनों एक साथ चाहिए। भारत में सेक्युलरिज्म अपना कर संवैधानिक संस्थाओं से तो धर्म को अलग कर दिया गया लेकिन जनता के मन से धर्म को कैसे अलग करोगे? भारत एक गहरे रूप से धर्मनिष्ट समाज वाला देश है। यह अपने 22 जनवरी 2024 को अयोध्या मंदिर में प्राण प्रतिष्ठा के अवसर पर देखा ही होगा जब पूरा भारत राममय था। यही चीज हर धर्म के प्रमुख त्योहारों पर देखते होंगे। किसी भी डेमोक्रेसी का मुख्य आधार होता है कि 'व्यक्ति को अपने पसंद के व्यक्ति को चुनने का अधिकार हो'। किसी को एक ऐसा नेता पसंद आ सकता है जो स्वयं बहुत धार्मिक

हो या अपने धर्म की अच्छाइयों को बढ़ावा देता हो।अब लोगों से यह कहना कि वे धर्म के आधार पर वोट न करें क्या उनके लोकतांत्रिक अधिकार, मौलिक अधिकार या खुद डेमोक्रेसी का ही उल्लंघन नहीं है? आप CSDS के आंकड़े देखिए उसमें साफ तौर पर बताया गया है कि 2014 व 2019 के चुनाव में अधिकांश हिंदुओं ने BJP को वोट दिया तथा अधिकांश मुस्लिमों ने उस पार्टी को वोट दिया जो BJP को टक्कर दे रही थी। आंकड़े बताते हैं कि 2019 के लोकसभा चुनाव में केवल 8% मुसलमानों ने भाजपा को मत दिया। इसके अलावा यदि हम देखें तो पाते हैं कि 2014 में हिंदू मतों का जो प्रतिशत भाजपा के नेतृत्व में राजग तथा उसके सहयोगियों को मिला था वह प्रतिशत 2019 के चुनाव में और भी ज्यादा बढ़ गया (दी हिन्दू , 30 मई 2019) । इस तरह से तो आपके मानदंड के अनुसार भारत के अधिकांश जनता अलोकतांत्रिक बन जाएगी । इसके अलावा एक स्थिति की कल्पना कीजिए अंडमान निकोबार में एक जनजाति रहती है। उसका अपना एक धर्म तथा संस्कृति है लेकिन वैश्वीकरण के प्रभाव में वह खतरे में है ,वहां धर्मांतरण की भी समस्या प्रारंभ हो गई है । अब वहां एक नेता उभरता है तथा अपने लोगों से वादा करता है कि अगर लोग उसे जिताते हैं तो वह संसद में ऐसा कानून पास करवाएगा जिससे उनके धर्म व संस्कृति सुरक्षित रहेगी यदि उस जनजाति के लोग धर्म या संस्कृति के आधार पर वोट देते हैं और इसे आप गलत मानते हैं तो समस्या उनमें नहीं, आपके मानदंड में है। बदलाव की आवश्यकता उनको नहीं आपके आपके मानदंडों को है।

भारतीय लोकतंत्र का चौथा मिथक यह है कि लोकतंत्र की सफलता के लिए शिक्षा एवं संपत्ति होना पूर्व शर्त है वहीं शिक्षा तथा गरीबी लोकतंत्र को कमजोर करती है। इस संदर्भ में माइकल जे. सेंडल की पुस्तक 'दी ट्रायन्नी ऑफ मेरिट : व्हाट'स बिकम ऑफ़ द कॉमन गुड' का जिक्र करना चाहूंगा। अपनी पुस्तक में उन्होंने यह बताया कि शिक्षित समुदाय असमानता तथा श्रेष्ठता व हीनता का पोषक होता है । एक शिक्षित व्यक्ति अपने आपको अशिक्षितों से श्रेष्ठ मानता है । इतना ही नहीं शिक्षितों की अपने में भी अपना एक अलग पद सोपान (हायरार्की) है, जैसे- इंजीनियरिंग व डॉक्टरी की पढ़ाई करने वाले अपने आप को कला एवं मानविकी की पढ़ाई करने वालों से श्रेष्ठ मानते हैं । माइकल जे सैंडल ने अलग संदर्भ में 2019 में हुए घोटाले के पर्दाफाश रिपोर्ट को आधार बनाते हुए बताया कि विश्व की प्रतिष्ठित विश्वविद्यालयों येल, स्टेनफर्ड, जॉर्जटाउन, यूनिवर्सिटी ऑफ़ साउथ कैलिफोर्निया) में अपने बच्चों का एडमिशन कराने के लिए मेरिटधारी वर्ग किस हद तक भ्रष्टाचार को बढ़ावा दे सकता है। उन्होंने नैतिक मानदंडों के आधार पर भी मेरीटोक्रेसी को खारिज किया है। उदाहरण के लिए एक असमान समाज में मेरिट को इस आधार पर उचित ठहराया जा सकता है कि व्यक्ति ने अपने विशेष गुण या फिर कठिन परिश्रम से अपना यह स्थान हासिल किया है।

सेंडल कहते हैं कि यह अवधारणा दोषपूर्ण है क्योंकि यह वास्तव में शिक्षक समाज माता-पिता आदि के योगदान को नकार देता है।

यूनेस्को ने अपनी वेबसाइट पर भ्रष्टाचार और शिक्षा के संबंधों पर एक लेख लिखा। जिसमें यह बताया गया की शिक्षा के क्षेत्र में भ्रष्टाचार होता है तो इससे सबसे ज्यादा वंचित वर्ग ही प्रभावित होता है। लेख में स्पष्ट रूप से बताया गया है कि यह भ्रष्टाचार शिक्षा के हर एक सेक्टर को प्रभावित करता है जैसे - वित्तपोषण, विनिर्माण, भर्ती, प्रोन्नति, स्कूलों में आपूर्ति किताबों का वितरण। यहां ध्यान देने वाली बात यह है कि यह भ्रष्टाचार आखिर करता कौन है। इसमें कोई दो राय नहीं कि इस भ्रष्टाचार में लिप्त लोगों में एक बड़ा हिस्सा मेरीटोक्रेट्स का है।जबकि डेमोक्रेसी में सबको सामान माना जाता है तथा सबकी समान गरिमा को स्वीकार किया जाता है। इसके अलावा हम शासन भ्रष्ट्राचार मुक्त चाहते हैं लेकिन शिक्षित व्यक्ति के भ्रष्टाचारी होने की सबसे ज्यादा संभावना होती है । उद्योगपतियों के भ्रष्ट्राचार को छुपाने के लिए जो सी. ए. और वकीलों की फौज खड़ी होती है वो उच्च शिक्षा प्राप्त लोग ही होते हैं । एक उच्च शिक्षा प्राप्त नेता एक अनपढ़ नेता की अपेक्षा ज्यादा अच्छे से अपने भ्रष्ट्राचार को छुपा सकते हैं। नौकरशाही जिसमें शिक्षितों में से भी उत्कृष्ट लोग जाते हैं वहां भी लाल फीताशाही एवं भ्रष्टाचार आम बात हो गई है। अतः शिक्षा को आधार बनाकर वोट किया जाए बहुत उचित नहीं है। यह आम धारणा है कि गरीब व अशिक्षित लोकतंत्र को कमजोर करते हैं लेकिन इस धारणा के उलट भारतीय लोकतंत्र ने यह दिखाया कि यह अपने आप में इस रूप में भी अनोखा है कि इसकी वैधता का स्रोत भारत के शिक्षित वर्ग की अपेक्षा अनपढ़ लोगों के वर्ग से अधिक तीव्रता से फूटता है। कभी-कभी यह दावा किया जाता है कि यदि जनता के अधिकांश हिस्सों को अपनी समस्याओं के निवारण तथा लोकतंत्र के मध्य चुनने का अवसर दिया जाए तो यह संभावना है कि जनता अपनी समस्याओं के निवारण को प्राथमिकता देगी तथा लोकतंत्र को त्यागने को भी तत्पर हो सकती है। लेकिन जावीद आलम ने इन प्रश्नों पर विचार करते हुए यह बताया की भारतीय जनता ने लोकतंत्र को दो अलग-अलग हिस्सों में बांटकर देखा है। इसके पहले हिस्से में लोकतंत्र एक प्रणाली है जिसमें संस्थाओं एवं कार्य प्रणालियों का एक मानक रूप है दूसरे हिस्से को लोकतंत्र चलाने वाले नेता एवं अधिकारी तंत्र के रूप में देखा है तथा दूसरा लोकतंत्र को चलाने वाले नेता एवं अधिकारी तंत्र के रूप में देखा है। जावेद आलम नहीं बताया कि लोकतंत्र एक प्रणाली के रूप में जनता के बीच भारी वैधता रखता है जनता अब भी लोकतंत्र की संस्थाओं, कार्य प्रणाली व प्रक्रिया पर विश्वास रखती है। लेकिन जनता लोकतंत्र को चलाने वाले अधिकारियों एवं नेताओं पर कम विश्वास रखती है। इस प्रकार जनता प्रतिनिधित्व की प्रणाली पर तो विश्वास करती है लेकिन इस प्रणाली द्वारा चुने गए नेताओं पर नहीं। आपातकाल का भी विश्लेषण करते

हुए जावीद आलम ने बताया कि इस दौर में लोगों को आजादी के महत्व का अनुभव हुआ। लोगों ने यह समझा कि भले ही स्वतंत्रता के दायरे बहुत विस्तृत न हो पर उसके लिए लड़ा जा सकता है, गरीबी में भी आजादी कितनी आवश्यक है (देखें आलम 2000; आलम 2002)। कुल मिलाकर यदि देखा जाए तो भारतीय लोकतंत्र की सफलता में समाज के अशिक्षित एवं गरीब वर्ग का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

निष्कर्ष

भारतीय लोकतंत्र को पश्चिम से आयातित मॉडल के आधार पर हमने एवं स्वयं पश्चिमी विचारकों ने संदेह की दृष्टि से देखा। दरअसल उन्हें जिस सजातीय समाज की तलाश थी भारत उसके विपरीत बहुलवादी समाज था। परिणाम यह हुआ कि भारतीय लोकतंत्र के अनेक पहलुओं को लोकतंत्र के बाधा के रूप में स्वीकार किया गया। भारतीय लोकतंत्र की सामान्य समझ यह है कि वह जाति, क्षेत्र, अशिक्षा, तथा धर्म आदि की राजनीति के साथ संक्रिया को एक समस्या के रूप में देखता है। पश्चिम से आयातित मॉडल लोकतंत्र की सफलता को व्यक्तिपरक नागरिकता के संदर्भ में देखता है जबकि भारतीय लोकतंत्र सामुदायिक संदर्भ में सामने आता है। इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि हम आनुभाविक अध्ययन के जरिए यह पता लगाने की कोशिश करें कि वास्तव में जिसे हम बाधा समझते हैं वह बाधाएं हैं या फिर सहायक कारक। जैसा कि हमने अपने अध्ययन में पाया जाति, धर्म, क्षेत्रवाद, अशिक्षा आदि ने जितना लोकतंत्र की साख को नुकसान नहीं पहुंचाया है उससे कहीं अधिक उसे वैधता प्रदान की है । हालांकि इसके नकारात्मक प्रभाव भी भारतीय राजनीति में देखने को मिले हैं लेकिन इनकी सकारात्मक भूमिका को एकदम से नकारना भारतीय राजनीति के यथार्थ को नकारना होगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. आलम, जावीद, 'गरीबों का लोकतंत्र वैधता के नए स्रोत', दुबे, अभय कुमार (संपा.), 'लोकतंत्र के सात अध्याय', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014 का संस्करण, पृष्ठ 68 - 90.
2. आलम, जावीद , 'हू वांट्स डेमोक्रेसी', ओरिएंट ब्लैक स्वान पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012(द्वितीय संस्करण), पृष्ठ 26 - 44.
3. कोठारी, रजनी, 'कॉस्ट एंड मॉडर्न पॉलिटिक्स , कविराज, सुदीप्ता (संपा.) 'पॉलिटिक्स इन इंडिया', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस
4. तंवर, रघुवेन्द्र तथा कदम, उमेश अशोक, 'इंडिया द मदर ऑफ़ डेमोक्रेसी', किताब वाले प्रकाशन ,2022, नई दिल्ली.

5. बीथम, डेविड एवं बॉयले, केविन, (अनु. देसराज गोयल), 'लोकतंत्र : 80 प्रश्न और उत्तर', राष्ट्रीय पुस्तक न्यास,2024 (दसवां संस्करण), नई दिल्ली, पृष्ठ 91-92.
6. भार्गव, राजीव, 'व्हाट इज सेक्युलरिज्म फॉर', भार्गव, राजीव (संपा.), 'सेक्युलरिज्म एंड इट्स क्रिटीक्स', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1998, पृष्ठ 486- 542.
7. सी.एस.डी.एस. लोकनीति पोस्ट पोल सर्वे दी हिंदू 30 मई 2019।
8. सेंडल, जे माइकल, 'दी ट्रायन्नी ऑफ मेरिट : व्हाट'स बिकम ऑफ़ द कॉमन गुड', पेंगुइन रेंडम हाउस, थॉमसन प्रेस इंडिया लिमिटेड नई दिल्ली, 2020 पृष्ठ 113-116.
9. हंसेन, थॉमस ब्लॉम एवं जैफर्लो , क्रिस्टोफे (संपा.), 'दी बीजेपी एंड द कंपल्शंस ऑफ पॉलिटिक्स इन इंडिया', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस नई दिल्ली, 1998.
10. https://etico.iiep.unesco.org/en/mapping-risks, 5 मार्च 2026 को एक्सेस किया गया।